मौत पर छलाँग

हिन्दी ADDA

आनंद हर्षुल

मौत पर छलाँग

वह ऊँचाई से गिरता है - जलता हुआ, और हजारों आँखें उसे देखती हैं गिरता। हजारों आँखों से उसके ओझल होते ही, छपाक् की आवाज आती है और थोड़ी देर बाद वह दिखता है, अपने दोनों हाथ हिलाता - कुएँ की मुँडेर पर। और मौत वहाँ कुएँ के भीतर सहमी बैठी रहती है।

मैं बीड़ी पीता हूँ और जितने गहरे कश खींच सकता हूँ - खींचता हूँ अपने भीतर। बार-बार जलाता हूँ बीड़ी, क्योंकि बार-बार वह बुझती है। बीड़ी में माचिस का खर्च कितना है! खाँसता रहता हूँ, फिर भी पीता हूँ। बिना पिए मन नहीं मानता। खाली पेट में जब धुआँ भरता है तो देह में एक अजीब कँपकँपाहट जागती है नशे की। मैं चाय भी

बहुत पीता हूँ और हर चाय के साथ बीड़ी जरूरी तौर पर। या बीड़ी और चाय साथ-साथ। सिर्फ बीड़ी पीना और चाय के बाद बीड़ी के साथ-साथ चाय पीना, तीनों का अलग अलग स्वाद है।

जीवन को जीने की जितनी अधिक किस्में होंगी, जीने का स्वाद उतना ही अधिक होगा - मैं ऐसा मानता हूँ। वैसे बहुत-से लोग हैं जो ऐसा नहीं मानते हैं। बहुत-से लोग हैं जो एक लकीर में जीते हैं : आसान जीवन! लकीर से जरा-सा भी टसमस हुए कि उन्हें गिरने का भय होता है : गिरना जैसे गुमना। (यह लकीर कौन खींचता है, जिस पर चलते पूरा जीवन चुक जाता है?)

मेरे बाबू भी ऐसे ही थे। बस-ड्राइवर थे तो काम तो उनका पूरी तरह, एक लकीर के भीतर नहीं था, पर उन्होंने उसे लकीर के भीतर लाकर ही पूरा किया। वे एक भयभीत बस-ड्राइवर थे और कोई खतरा मोल नहीं लेते थे। उनकी बस की गति, पचास से ऊपर कभी नहीं रही। पचास, वह भी खाली दिखती सड़क पर, वरना चालीस या चालीस से नीचे आम तौर पर। वे अपने रूट के एक-एक पेड़, एक-एक स्पीड-ब्रेकर और एक-एक गड्ढे को जानते थे, पर गति उनकी नहीं बढ़ती थी। होना यह चाहिए था कि खतरों को जानते ही खतरों के बीच गति बढ़े। पर बाबू सड़क के खतरों को इस तरह जानते थे, जैसे अपनी पत्नी को जानते थे, जैसे अपने बेटे को जानते थे, जैसे अपने घर-पड़ोस को जानते थे। तो इस जानने में प्रतिद्वंद्विता कहीं नहीं थी और इसलिए गति में तीव्रता नहीं थी।

बाबू के भीतर बस ड्राइवर के सहज गुण नहीं थे। न वे बीड़ी पीते थे और न शराब, न अफीम और न डोडा। मेरे बाबू एक भले आदमी थे। इतने भले कि जितने आमतौर पर लोग होते नहीं हैं। इतने भले की पूरी तरह असहज। इतने भले कि मूर्ख माने जाने की कगार पर खड़े। वे गलती से बस-ड्राईवर थे। यह बात नहीं कि बस-ड्राइवरी भले आदमियों का काम नहीं है। वह है, पर बाबू किसी स्कूल में, विशेषकर गाँव के प्राइमरी स्कूल में गुरूजी होने लायक थे। प्राइमरी स्कूल में इसलिए कह रहा हूँ कि मैंने जितना उनके बारे में सुना है - वे बड़ी कक्षाओं को नहीं सँभाल पाते - मुझे लगता है। पर वे ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं थे : बस छठी कक्षा। पहली-दूसरी कक्षा को तो वे पढ़ा लेते। पर गुरूजी को नौकरी, पढ़ा सकने पर नहीं मिलती थी। वे कम से कम दसवीं पास होते तो नौकरी उन्हें मिल जाती। तो उन्होंने बालाजी बस सर्विस में बस-ड्राइवर होना ठीक समझा और अपने शेष जीवन, एक गुरूजी मन आदमी, बस-ड्राइवर की सीट पर बैठा रहा और उस सीट पर बैठे-बैठे ही मारा गया।

सड़क खाली थी। बस गति पचास से ऊपर नहीं थी। पर पता नहीं कहाँ से आया एक साइकल-सवार बीच सड़क पर बाबू को दिखा। वह दिखना इतना अचानक था कि उसे बचाने की कोशिश में बाबू की बस सड़क के किनारे खड़े आम के एक विशाल पेड़ से टकरा गई - ठीक उस तरफ से जिधर बाबू बैठे थे स्टीयरिंग सँभाले। स्टीयरिंग उनके सीने में घुस गई थी। वे तुरंत मर गए थे या कुछ ही देर पीड़ा झेलते रहे - ठीक पता नहीं। जब बस के लोगों का दिमाग, दुर्घटना से बाहर आया तो उन लोगों ने बाबू को मरा पाया था। बाकी सब बच गए थे। बस, बाबू मारे गए थे। वह साइकल-सवार तो बच ही गया था जो जर्जर साइकल पर, अपनी जर्जर देह को लेकर सवार था : जो मरता तो आधे से अधिक मर चुका आदमी पूरा मरता - जिसके लिए बाबू मारे गए थे। कहते हैं वह साइकिल-सवार जो पास के ही गाँव का था - बाबू के मरने के तीसरे दिन ही मर गया। वह तपेदिक की अंतिम दशा में था।

बाबू मरे तो मैं बस छह साल का था। वे मुझे पहली कक्षा में दाखिला दिलाने के दूसरे दिन मर गए थे। उनके नहीं रहने ने आखिरकार माँ को भीतर तक हिला दिया। माँ उन्हें बहुत चाहती थीं शायद माँ को यह लगता रहा हो कि बाबू ने उससे ब्याह कर बड़ा त्याग किया है। (माँ आदिवासी थीं और बाबू ब्राम्हण)

बाबू की बस, जब बंदरचुआँ पहुँचती तो एक साँवली-सी लड़की, सोलह-सत्रह बरस की, सिर पर टोकरी रखे कुछ और लड़कियों के साथ बस में चढ़ती थी। ड्राइवर की सीट के ठीक बगल में खाली जगह बची रहती - इंजन की कँपकँपाहट और शोर से भरी। लड़की टोकरी अपने सिर से उतारकर, उस खाली जगह पर रख देती और खुद खड़ी रहती सिमटी-सी, जैसे खाली जगह को खाली बचाए रखना जरूरी हो। लड़की इंजन की घड़घड़ाहट को एकटक देखती कि कैसे इंजन का बड़ा-सा ढक्कन जोर-जोर से काँप रहा है। कभी-कभी उत्सुकता से वह बाबू की ओर भी देख लेती थी। पर उसका देखना इंजन के लिए ही अधिक रहता। वह खड़ी रहती, बैठती बहुत कम। कभी-कभी टोकरी के पास सिकुड़ी-सी बैठी दिखती थी। टोकरी में चार, चिरौंजी, महुआ, ककड़ी और बथुआ, बोहार, कोयलार, ककटेल भाजी जैसी चीजें होती थीं। कभी बड़ा-सा कुम्हड़ा होता था अकेला और कभी अकेला कटहल भी। जो होता, वह जब कुनकुरी बाजार में उतरती, एक मुट्ठी वह चीज - बाबू के बाएँ हाथ को अपने बाएँ हाथ से खींचकर - उनकी हथेली में रख देती, फिर उनकी हथेली को अपनी दोनों हथेलियों को बीच लेकर हलके से दबाती और धीरे से मुस्कुराती। फिर टोकरी उठाती और बस से नीचे उतर जाती थी। जब टोकरी में बस कुम्हड़ा या कटहल रहता था तो उसके पल्लू में बाबू के

लिए कुछ-न-कुछ बँधा होता था। बाबू को उसके सिर का तिरछा जूड़ा और जूड़े पर खोंपा कंधा भी मुस्कुराता-सा लगता था।

बहुत जल्दी बाबू, सप्ताह के उस दिन का, सप्ताह-भर इंतजार करने लगे। बहुत जल्दी बाबू, बिना लड़की की पहल के, अपनी हथेली लड़की की ओर बढ़ाने लगे कि हथेली में मिठास पा सकें। बहुत जल्दी बाबू की बस, लड़की का इंतजार करने लगी। लड़की अब बस में खड़ी होती इंजन के पास, तो लड़की का दायाँ हाथ बाबू की सीट पर होता और बस के झटकों के साथ-साथ बाबू की पीठ पर स्पर्श जगाता रहता। बहुत जल्दी लड़की का हाथ बाबू के कंधों को छूने लगा। बहुत जल्दी बाबू, बस चलाते-चलाते, लड़की की ओर कनखियों से देखकर मुस्कुराने लगे। बहुत जल्दी ऐसा हुआ कि बाबू को लगा कि वह आदिवासी लड़की दुनिया की सबसे सुंदर लड़की है। बाबू के पिता ने विरोध किया, बाबू की माँ ने विरोध किया, और बाबू को घर से निकलना पड़ा। बाबू गाँव के बाहर एक छोटी-सी झोपड़ी में उस आदिवासी लड़की के साथ रहने लगे।

माँ के शरीर में गोदने थे - हाथों में कोहनियों तक और पैरों में घुटनों तक। और ठुड्डी में था गोदने का एक खूबसूरत फूल हरा, और माथे पर गोदने की हरी तिकोन बिंदी। बाबू के मरते ही सबसे पहले बिंदी का रंग हुआ काला, फिर ठुड्डी का हरा फूल काले फूल में बदल गया। फिर हाथ और पैर के गोदने हुए काले। माँ पहले अकेली हुई, फिर चुप, फिर नहीं रहीं। माँ आधी रात मरीं। मैं माँ के साथ ही सोया था। बाबू को मरे तीन-चार महीने हो चुके थे। मैंने अपनी नींद में माँ की आखिरी हिचकी को सुना था। मैं अब भी उस आवाज को नहीं भूल पाता हूँ : मौत की हिचकी कि जैसे कहीं कुछ फँसा हो और जिसे छुड़ाने की कोशिश हो रही हो और जो छूट न रही हो। मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा था। मैं उठ बैठा था - डरकर। उस समय मेरी उम्र इतनी नहीं थी। उस समय की बहुत-सी बातें तो मैं आज जाकर समझ पाता हूँ। पर मुझे लगा था कि कहीं कुछ गड़बड़ है। पर अँधेरा था और कुछ ठीक दीख नहीं रहा था। मैंने पुकारा माँ! वह इस शब्द पर तुरंत उठती थी, पर नहीं उठी। मैंने माँ के सिरहाने रखी लालटेन उठाई और फिर माचिस-अँधेरे को टटोलकर। मैं रोशनी कर पाया तो माँ दिखी - छत की कड़ियों को देखती, जहाँ एक चूहे की हिलती पूँछ थी।

मैंने फिर पुकारा माँ! नहीं सुनी। मैंने उसकी बाँह पकड़कर हिलाई तो बाँह मेरी ओर गई। मैं लगातार माँ-माँ पुकार रहा था। अचानक मैं रोने लगा। मैं खाट से उतरकर, माँ के चारों ओर घुमने लगा - रोता। मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि मैं क्या करूँ। माँ अब भी छत की कड़ियों को ताक रही थी। मैं रोते-रोते थक गया। मैं माँ के पैरों के

पास नीचे बैठ गया, खाट के पाटे पर सिर टिकाकर। मैंने जब सिर उठाया तो छत चूहों की पूँछों से भरी हुई थी। चूहे बहुत शोर कर रहे थे और मेरे रोने की आवाज उनकी उठा-पटक में दबने लगी। मैं सिसकियों के बीच कब सो गया थककर, मुझे पता ही नहीं चला था।

उठा तो सब-कुछ वैसा ही था। बस, माँ की देह पर मक्खियाँ मँडराने लगी थीं। मैंने अपनी हथेलियों से उन्हें उड़ाने की कोशिश की, पर वे बार-बार माँ के चेहरे पर बैठ रही थी - माँ के ओठों के किनारे से बह चुके लार की लकीर पर। मुझे मक्खियों को दूर करने के लिए माँ की लार पोंछनी थी। मैं कोई कपड़ा ढूँढ़ने लगा - साफ-सुथरा। माँ बहुत सफाई-पसंद थी। मैं किसी भी कपड़े से उसका मुँह नहीं पोंछ सकता था। और मुझे बाबू का अँगोछा मिल गया। बाबू के अँगोछे में बाबू के कंधों की खुशबू थी। मैंने बहुत धीरे-धीरे माँ का मुँह पोंछा। वह अब भी छत की ओर देख रही थी। चूहों की हिलती पूँछें अब नहीं थी। क्या माँ मर गई? मैंने सोचा। मैं मृत्यु को बाबू की दुर्घटना से जानता था। पर उस जानने में और माँ के इस तरह पड़े रहने में - बहुत अंतर था। मैं किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पाया, पर मुझे लग रहा था कि वह मर चुकी है।

घर का दरवाजा खोल मैं बाहर निकला। बाहर सुबह निकल रही थी। मैं मामा के घर गया जो थोड़ी दूर पर था। मैंने साँकल खटखटाई। थोड़ी देर बाद मामी बाहर आई। मैं भूल गया कि मुझे क्या कहना है। क्या कहना है, यह शायद मैंने सोचा भी नहीं था। मैं फफक-फफककर रोने लगा। मामी के बार-बार पूछने पर, बहुत देर बाद मैं कह पाया कि मेरी माँ को कुछ हो गया है।

एक बच्चा जब अकेला हो जाता है तो जीवन उसके लिए कितना कठिन हो जाता है! पर धीरे-धीरे अकेले रहने और जीने की आदत पड़ जाती है। मैं कुछ महीने ही मामा के घर रह सका। किसी और के बच्चे को अपने बच्चे की तरह पालना लोगों के लिए हमेशा कठिन होता है। तो धीरे-धीरे मैं मामा के घर के लिए कठिन होता गया। मामी खाना देती, पर बची दाल और सब्जी में पानी डाल, ज्यादा बनाकर देती। बची हुई रोटियाँ होतीं, जिनमें काले धब्बे बहुत होते, जिन्हें नोच-नोचकर हटाने के बाद रोटी और कम बचती। और बासी चावल होता। मेरा पेट नहीं भरता था। ऐसा नहीं था कि मेरी खुराक बहुत थी, जो मिलता वह मेरी कम खुराक से भी कम रहता था।

भूख तरीके खोज लेती है और मेरी भूख ने भी तरीका निकाल लिया। मैं ठीक खाने के समय किसी भी घर के सामने जाकर खड़ा हो जाता। लोग दया करते और मुझे बुलाकर खिला देते। ऐसी दया रोज-रोज एक ही घर नहीं कर सकता, यह मैं समझता

था। मैं दुत्कारे जाने से पहले ही दूसरा घर ढूँढ़ लेता था। गाँव में इतने दयावान घर तो थे ही कि जिस घर के दरवाजे पर मैं पहली बार खड़ा हुआ - उसके ठीक आठ दिन बाद मैं दुबारा वहाँ खड़ा हुआ। पहले घर से आठ दिन में इतनी दया इकट्ठी कर ली थी कि मुझे खाना मिल गया। इस तरह देखें तो पेट तो मेरा भर जाता था, पर मन हमेशा खाली रहता। माँ याद आती। बाबू याद आते। झोपड़ी में अकेला पड़ा-पड़ा मैं रोता रहता।

धीरे-धीरे मेरे भीतर अजीब बदलाव आया। मैं वजह-बेवजह गुस्सा करने लगा। मैं छड़ी से पेड़ों को पीटने लगा। चिड़ियों पर पत्थर फेंकने लगा। मैंने कई तितलियों की उड़ान छिन ली : मैं उन्हें अपनी हथेली में लेता और मसल देता। एक दिन तो मैंने हद कर दी - एक छोटा बच्चा, यही लगभग चार पाँच साल का, अपने घर के सामने अकेला खेल रहा था। पता नहीं मुझे क्या सूझा कि मैंने चट् से उसे एक झापड़ मारा और भाग गया। उसके चीख-चीखकर रोने की आवाज (जो मेरे भागते में, मेरे पीछे-पीछे आ रही थी) सुनकर मुझे खुशी हुई।

मैं गिर रहा था उस गहराई में, जहाँ से ऊँचाई की कल्पना ही संभव नहीं थी। वह तो अच्छा हुआ कि इस बीच कुनकुरी में मीना बाजार लगा। मैंने सुना और बस में बैठ गया। बस जानती थी कि मैं तिवारी ड्राइवर का लड़का हूँ। मैं बस से उतरा तो ड्राइवर ने कंडक्टर से कहा - मुन्ने को कुछ पैसा दे दे, मीना बाजार घूमेगा।

जिस जगह मुझे बस से उतारा गया था, मीना बाजार वहाँ से दिखने में बहुत पास था। मुझे रंग-बिरंगे-आसमान छूते झूले दिख रहे थे। पर मैं भटक गया। मीना बाजार के दिखाई देने से, मैंने सोचा था कि मैं आसानी से वहाँ तक पहुँच जाऊँगा। पर मैंने जो रास्ता चुना था, वह कहीं और जाता था - थोड़ी देर बाद ही मुझे पता चल गया कि मैं भटक गया हूँ। मीना बाजार के दिखते झूले जो मेरे करीब आ रहे थे, अब दूर होने लगे थे। फिर मैंने एक बूढ़े से पूछा तो उसने कहा, चलो! मैं उसके पीछे-पीछे चलने लगा। बूढ़े की बाईं टाँग में कुछ गड़बड़ी थी और वह उसे झटके से उठा और पटक रहा था, इसलिए उसकी चाल धीमी थी और उसके पीछे होने में मुझे छूटने की परेशानी नहीं हुई।

मीना बाजार के गेट में पहुँचकर बूढ़ा पलटा, 'किससे मिलना है?'

'किसी से नहीं!' मैंने कहा, 'मीना बाजार देखना है।'

बूढ़ा हँसा, 'शाम को खुलेगा... छह बजे आना।' और बूढ़ा गेट पर आड़े लगे बाँस को उठाकर भीतर घुस गया।

मैंने ताक-झाँक की। भीतर सुनसान था। थोड़ी देर, दूर तक जाता बूढ़ा दिखता रहा, फिर वह भी गायब हो गया। मैं टिकट-खिड़की के पास बैठ गया - ठीक उसके नीचे कि खिड़की खुलेगी और मैं पहला टिकट लूँगा।

दोपहर का समय था और मीना बाजार जिस मैदान में लगा था वहाँ सुनसान था कि उस मैदान में पसरी ठंड की गुनगुनी धूप को खेलती, एक चिड़िया भी नहीं थी। वह बहुत ऊबड़-खाबड़ सूखा मैदान था, जहाँ कोई कँटीला पेड़ तक नहीं था। मैंने पेड़ों और चिड़ियों से इतना खाली मैदान इससे पहले नहीं देखा था। मैं पूरी दोपहर बैठा रहा - भूखा-प्यासा। मुझे डर था कि मैं उठूँगा तो मेरी जगह कोई और आ जाएगा और पहली टिकिट मुझसे छूट जाएगी।

और उस दिन, मैं मीना बाजार की पहली टिकिट खरीदने में सफल रहा। मैं दौड़कर सबसे पहले मीना बाजार के भीतर घुसा था। उस दिन जो मैं मीना बाजार के भीतर गया तो आज तक मीना बाजार से बाहर नहीं आ पाया। अब मीना बाजार मेरे भीतर लगता है।

वह एक-एक सीढ़ी ऊपर उठ रहा था और आसमान एक-एक सीढ़ी नीचे आ रहा था। हजारों आँखें उसे देख रही थीं। आज वह जीवन की सबसे ऊँची छलाँग के लिए था। पहली बार जब उसने छलाँग लगाई थी तो वह ऊँचाई, आज की ऊँचाई से एक-चौथाई ही थी या उससे भी कम रही होगी। आज वह इतनी ऊँचाई पर होगा कि ठीक उसके पीछे झिलमिलाती मौत होगी। जीवित बचा रहा तो सीढ़ी अपनी ऊँचाई फिर बढ़ा लेगी। सीढ़ी की ऊँचाई, हर सफल छलाँग के बाद, उसके लिए नीची हो जाती है - ऊँचाई को फिर बढ़ाना होता था कि उसे ऊँचाई लगे। वह मौत से नहीं डरता था। मौत उसके लिए खेल है, जैसे किसी टीले से नदी पर छलाँग और तैरकर किनारा पकड़ना और किनारे खड़े होकर मुस्कुराना।

वह जैसे-जैसे सीढ़ी पर ऊपर उठता गया - उसे देखती आँखें नीचे छूटती गईं। वह हर पाँचवीं सीढ़ी पर ठहर कर बड़ा सा-रूमाल लहराता था। उसका सिर भर दिख रहा था - गर्दन से ऊपर। बाकी देह, कैनवस जैसे मोटे सफेद कपड़े की जैकेट और पतलून और सफेद जूतों से ढकी थी। उसके हाथों में भी मोटे दस्ताने थे - सफेद। पैर से गर्दन तक उसके पास कठोर, चमकीली सफेदी थी। कैनवस के कपड़े जैसे उसकी देह को बाँधे हुए थे, इसलिए सीढ़ियों पर उसके पैर उठने में धीरे और कठिन थे।

जब वह ऊँचाई के ठीक बीच पहुँचा तो उसने हाथ हिलाया और उसके हाथों से कागज की रंग-बिरंगी पन्नियाँ झरने लगीं। हजारों आँखों ने उन रंग-बिरंगी पन्नियों को देखा और कुछ ने अपने चेहरे पर उनका गिरना महसूस किया। क्षण-भर बाद ही, हजारों आँखों ने देखा कि वह फिर उठ रहा है और उसका आकार छोटा होता जा रहा है। आसमान तारों के साथ उसका इंतजार कर रहा था और चंद्रमा नहीं था। हवा तेज चल रही थी और उसमें थोड़ी ठंड थी। हजारों आँखें ऊपर उठी रहीं - एकटक। हजारों आँखों में धैर्य बना रहा। हजारों आँखों में उत्तेजना की चमक थी - पनीली।

सीढ़ी पर चढ़ते हुए, अचानक उसे अपनी माँ के माथे का तिकोन गोदना याद आया और उसकी ठुड्डी में गोदा हरा फूल। उसने आसमान की ओर देखा। आसमान अब पहले से अधिक नीचे था - उसके करीब। इतने तारों में, एक उसकी माँ होगी - उसने सोचा। बचपन में सुने इस वाक्य पर उसका भरोसा बना हुआ था कि जो मरते है, वे तारे बन जाते हैं। उसने एक तारा, माँ समझकर अपने लिए चुना। दूसरा, एक तारा ठीक माँ के पास उसे दिखा और बाबू याद आए। मृत्यु में डूबा उनका चेहरा, जैसे मृत्यु में डूबा बिलकुल नहीं था - वह विस्मय में डूबा चेहरा था। बाबू के लिए चुना गया तारा विस्मय में डूब गया। उसे आश्चर्य हुआ कि आसमान के हमेशा करीब होने के बावजूद इससे पहले, उसने कभी माँ और बाबू के लिए तारे नहीं चुने थे। तो वे दो तारे माँ और बाबू उसका खेल गौर से देखने लगे।

उसने नीचे देखा, हजारों चेहरे उसकी ओर थे। इमारतें रोशनी और अँधेरे में डूबी हुई थीं। इमारतों के बीच झोपड़ियाँ लुप्त थीं। इन्हीं लुप्त झोपड़ियों-सी, गाँव की उसकी झोपड़ी थी, पर गाँव में कोई झोपड़ी लुप्त नहीं थी। अब वह झोपड़ी बची होगी या नहीं? - उसने सोचा।

उसे दूर टीवी-टावर की लाल रोशनी दिखी - चमकती। अगर वह अपनी छलाँगों में जीवित बचता गया तो एक दिन वह टीवी टॉवर की ऊँचाई को भी अपनी छलाँग के लिए पा लेगा - उसने सोचा और मुस्कुराया। और उसका मुस्कुराना सिर्फ तारों ने देखा। वह आसमान की ओर देखता ऊपर उठता रहा और आसमान उसकी ओर देखता नीचे आता रहा। आखिरकार, नीचे की हजारों आँखों से बँधा वह अंतिम सीढ़ी पर पहुँच गया - लकड़ी के उस छोटे से मंच पर जो सीढ़ी के शीर्ष पर बना हुआ था। वहाँ पहुँचकर, उसने एक क्षण अपनी साँसें इकट्ठी कीं और फिर हाथ हिलाने लगा। हजारों आँखों में चमक बढ़ गई : हिंसक-सी उत्सुक चमक।

वह उसे देख रहीं आँखों की चमक नहीं देख पा रहा था। उसे नीचे हिलते हाथ दिख रहे थे - हजारों हिलते हाथ। वह खुश हुआ कि वह हीरो है। एक अजीब हीरो, जिसे इन हजारों आँखों में से कोई एक भी आँख, दिन में सामने देखे तो न पहचाने। वह मौत की छलाँग में देखा जाता था और छलाँग के बाहर उसकी पहचान बहुत धुँधली थी।

'तैयार!' नीचे से आवाज उठी जो उस तक बहुत धीमी होकर आई। वह जानता था कि यह आवाज आएगी, इसलिए वह, उसे बिना सुने ठीक समय पर सुन लेता था। उसने हाथ हिलाया कि तैयार है।

वह मीना बाजार के मैनेजर की आवाज थी। वह काले रंग का मोटा-तगड़ा आदमी था, जिसने शराब पी-पीकर आँखों के नीचे थैलियाँ गढ़ ली थीं। उसके पास ही एक दुबला काला-सा आदमी चुपचाप खड़ा था। अचरज कि वह ऊपर देख भी नहीं रहा था।

'तैयार!' मैनेजर ने दुबारा पुकारा। उसने फिर हाथ हिलाया कि तैयार है। मैनेजर की आवाज वैसे ही बहुत मोटी और भारी थी, पर आसमान को आवाज देना कितना कठिन है!

उसने आसमान की ओर देखा। चंद्रमा नहीं था - बस तारे थे। वह थोड़ी देर चंद्रमा खोजता रहा - अपनी आँखों से। तारे थे तो उसमें एक तारा माँ थी, एक बाबू थे। उसने उन्हें प्रणाम किया। उसका प्रणाम नीचे हजारों आँखों को दिखा। उसका प्रणाम लाखों तारों को दिखा।

उसने अपने जैकेट से कागज की पन्नियाँ निकालीं और नीचे छोड़ दीं। आज हवा तेज है - उसने सोचा। पन्नियों को नीचे आने में समय लगा। नीचे दूर खड़े जिन लोगों ने अपने चेहरे और बालों पर उन पन्नियों को पाया वे खुश हुए, पर उन्होंने खुशी जाहिर नहीं की।

उसके हाथों में एक बोतल दिखी। उसने अपना बायाँ हाथ आगे फैलाया और बोतल के तरल से, उसमें एक लकीर बना दी। फिर बाएँ हाथ में बोतल लेकर, उसने अपने दाहिने हाथ में तरल लकीर को रच दिया। फिर उसने अपना एक पैर उठाया, फिर दूसरा और उसके दोनों पैर, बोतल में भरी तरलता के भीतर आ गए। अंत में उसने अपने दोनों कंधों पर तरलता को उँड़ेल दिया और बोतल हवा में उछाल दी। ठीक उसी समय, कुएँ से आग की लपटें उठने लगीं।

लोगों ने देखा कि उसके हाथ में एक थैलीनुमा टोपी आई और उसने उसे अपने सिर में पहनकर नीचे खींच लिया - गर्दन तक, और उसे कस लिया - ठुड्डी के नीचे। अब सिर से पैर तक वह ढक चुका था।

फिर उसके हाथ में माचिस दिखी। फिर लौ दिखी। फिर वह दिखा - जलता और ऊँचाई से नीचे गिरता। एक क्षण भी नहीं गुजरा होगा कि छपाक् की आवाज आई और कुएँ में लगी आग बुझ गई।

हजारों आँखों को अब उसके बाहर आने का इंतजार था कि खेल तब समाप्त होता था, जब वह कुएँ से बाहर आकर, कुएँ की मुँडेर के चारों तरफ, हाथ हिलाता घूमता था।

लोग इंतजार करते रहे, पर वह बाहर नहीं आया। मैनेजर ने कुएँ के भीतर झाँककर देखा - वहाँ कोई हलचल नहीं थी। वह चिंतित दिखा। हजारों आँखें अब कुएँ की ओर देख रहीं थीं - उत्सुक। खेल ने नया मोड़ ले लिया था।

मैनेजर ने अपने पास खड़े आदमी के कान में कुछ कहा। वह आदमी कुएँ की मुँडेर पर चढ़ा, फिर कुएँ में कूद गया। मैनेजर मुँडेर के चारों ओर बेचैन घूमने लगा।

थोड़ी देर बाद वह आदमी बाहर आया - पानी से लथपथ और उसके हाथ इस तरह हिले जैसे कह रहे हों कि कुएँ में कुछ नहीं है। पर वे अपने कहने में आश्वस्त हाथ नहीं थे।

'तो कहाँ गया**?**' मैनेजर चीखा।

वह आदमी चुप रहा। भीड़ में सन्नाटा गहराता गया।

'एक बार और देख**!**' मैनेजर ने उस आदमी को डाँटते हुए कहा।

वह आदमी फिर कुएँ में कूदा। इस बार वह बहुत देर तक कुएँ के भीतर रहा - जब तक उसकी साँसें उसका साथ देती रहीं। पर वह नहीं मिला। वह आदमी जल की सतह पर दिखा - एक क्षण, अपनी साँसों को सँभालते और फिर पानी में गायब हो गया। इस बार वह उसे दिख गया - कुएँ की तल पर, गर्भस्थ शिशु की मुद्रा में पड़ा। उसके ऊपर ढेरों काली मिट्टी थी जो उसे दिखने से बचा रही थी। यह तो अच्छा हुआ कि पानी में होती लगातार हलचल ने उसके घुँघराले बालों से मिट्टी हटा दी थी और वह दिख गया था, नहीं तो वह आदमी उसे गायब मानता, और उसके गायब होने पर जीवन-भर आश्चर्यचकित रहता। उस आदमी ने उसके घुँघराले बाल पकड़े और उसे खींचता ऊपर ले आया।

वह बेहोश पड़ा था और वह आदमी जो अच्छा तैराक था - उसके पेट से पानी निकालने की कोशिश कर रहा था। मैनेजर उन दोनों के पास खड़ा था - चिंता में लथपथ।

भीड़ सन्नाटे में खड़ी थी बहुत देर से - इतनी देर कि थक चुकी थी। और अंततः वह बिखरने लगी। बिखरती भीड़ से हलका-हलका शोर उठ रहा था - इतना हलका कि उसे फुसफुसाता शोर कह सकते थे।

उस दिन जब मुझे होश आया था तो मेरे सिर के दाहिने हिस्से में पीड़ा की तेज लहरें उठ रही थीं और एक आदमी मेरे ऊपर झुका हुआ था, जिसे मैं पहचान नहीं पा रहा था। मैं कहाँ था - मुझे पता नहीं था। मुझे बार-बार लग रहा था कि मैं किसी विचित्र-सी जगह पर हूँ - ऐसी जगह जिसे मैंने पहले कभी देखा नहीं है। वह बहुत सुनसान जगह थी। वहाँ हवाओं का डरावना शोर था और रोशनी की चुप्पी थी। मुझे लगा कि वहाँ से मैं किसी भी दिशा में जा सकता हूँ और मैं बिना चुने एक दिशा की ओर चल पड़ा था। चुनने के लिए मेरे पास कुछ था ही नहीं - सभी दिशाएँ एक-जैसी थीं। (यह मुझे बाद में मालूम पड़ा।)

बहुत देर तक या शायद बहुत दिनों तक मुझे कुछ याद ही नहीं आया। फिर मुझे अपनी छलाँग की याद आई - धुँधली-सी याद। बाद में मैंने मान लिया कि वह मेरी अंतिम छलाँग थी।

मेरी उस अंतिम छलाँग का असर मेरे साथ-साथ दो और व्यक्तियों पर हुआ है। मीना बाजार का शराबी मैनेजर अब पागल हो चुका है। वह बेवकूफ उस रोज मुझे खोजने मीना बाजार से बाहर निकला था। उसे मेरी चिंता नहीं थी। उसे मौत के खेल के बंद हो जाने की चिंता थी। मैं उसे नहीं मिला। वह आज भी सड़कों पर मुझे ढूँढ़ता फिर रहा है।

दूसरा, रग्घू मेरा दोस्त, मैं मानता हूँ कि उसने ही मुझे कुएँ में डूबने से बचाया होगा। वह उस रात सो नहीं सका और सुबह की रोशनी में, जब वह अपनी प्यास के लिए, पानी के घड़े के पास गया तो पानी देखते ही उसके दाँत किटकिटाने लगे। आखिरकार वह प्यासा मर गया।

मैंने बहुत प्रयत्न किया कि मैं उन दोनों तक पहुँच सकूँ। मैं एक को पागल होने से और दूसरे को मरने से बचा सकता था। पर मैं ऐसा कर नहीं सका। आप अगर यह जानते हों कि आप कहाँ हैं, तो आप दूसरी किसी जगह के लिए यात्रा कर सकते हैं। पर अगर आप यह नहीं जानते हों कि आप कहाँ हैं तो हर यात्रा आपको, आपकी जगह पर ही लौटा देती है। मेरे साथ यही हुआ है। मैं उन दोनों तक पहुँचने की अपनी यात्राओं में

बार-बार वापस अपनी जगह पर लौटता रहा हूँ। और अब मैं बिलकुल अकेला हूँ। पर मेरे भीतर एक मीनाबाजार क्यों बार-बार बनता और टूटता रहता है - मैं समझ नहीं पाता हूँ...